THE HINDU

Date: 13-06-26

Long overdue

Coal exchanges can balance out energy scarcities across India

Editorial

Unveiled at a time of record domestic coal production, the Coal Exchange Rules, 2026, are a case of better-late-than-never. They will create a broad market-based mechanism through regulated trading platforms for the lynchpin of India's energy system — coal. They are aimed at enhancing price discovery, transparency, access for small consumers, as well as, one would hope, reduce bilateral agreements that are often opaque and come with a whiff of graft, too often. Today, most coal transactions between producers and buyers take place through long-term contracts, primarily for the power sector, followed by auctions, imports and captive mining. While India's commodity exchanges are well established, they function largely as financial markets rather than physical delivery platforms. Coal exchanges, however, appear closer in design to power exchanges, which, despite modest volumes, play a role in price discovery, market signalling and the development of secondary markets. As if to prove this point, coal exchanges are expected to serve the non-regulated sector, which relies on Coal India auctions where coal is often sold at a premium to the highest bidder. Power exchanges are not merely niche trading platforms; they serve as points of reference for the broader power market. They have enhanced price discovery and served as a balancing market without replacing long-term power purchase agreements. Initially the power exchanges were only balancing shortages, but eventually the spot prices became a barometer of the broader power market indicating scarcity, surplus and system stresses for all electricity stakeholders. Perhaps the first role of coal exchanges could be to open up inventories, allowing surpluses to balance out shortages across India.

The templates for the two exchanges are not very different though the specific rules framed by the Coal Controller Organisation of India will determine the success of coal exchanges. Just as with the successes, the failures of power exchanges can also serve as lessons learned for coal. Coal is not as fungible as electricity, which once generated is the same everywhere requiring only minimum standards. Coal quality varies widely. Therefore, robust standards and quality assurance are as important as contract design, liquidity creation and enforcement. The latter set of requirements will ensure that major producers and consumers are drawn to the coal exchanges. The emphasis should be on facilitating participation of retail consumers unlike power exchanges, which are dominated by discoms. Coal India's stance will be crucial.

Besides safeguards against volatility, dispute resolution mechanisms and improved transportation logistics will be important too, since the coal exchanges will be physical delivery platforms.

Date: 13-06-26

ज्ञान मूल्यवान, बशर्ते सही हो और सबको मिले

संपादकीय

एन्थ्रोपिक के जन्मदाता डारियो अमोदेई ने ताजा लेख में दुनिया को आगाह किया है कि एआई के लाभ लेने के साथ ही इसकी अपरिमित हानियों को नजरअंदाज करना आत्मघाती होगा संसदें कानून बनाने में वर्षों पीछे रहती हैं। भारत में डिजिटल पर्सनल डाटा प्रोटेक्शन एक्ट को बनाने में वर्षों लगे और आज तक इसकी क्रियान्वयन नियमावली नहीं बन सकी है। डारियो ने एक अन्य खतरे से भी आगाह किया है- अगर एआई को सबको उपलब्ध नहीं कराया गया तो समाज में भारी विभेद होगा। लिहाजा सरकारों को इसे सर्वसुलभ बनाना होगा। एआई का इस्तेमाल कर अपने ज्ञान को विस्तार देना और उसे समाजोपयोगी बनाना कतई गलत नहीं है। आखिर एआई ज्ञान क्या है ? अब तक उपलब्ध बौद्धिक सम्पदा का डिजिटल एक्सेस और उसे पलभर में क्रमबद्ध कर स्ट्रक्चर्ड स्वरूप में उपलब्ध करना। एक रिसर्चर को जिस ज्ञान को हासिल करने में लाइब्रेरी-दर-लाइब्रेरी वर्षों भटकना पड़ता था या सरकारी ऑफिस में आंकड़े छिपाने की आदत से पार पाना होता था और मजबूरन सरकार द्वारा सुविधानुसार चुने तथ्यों पर ही भरोसा करना होता था, वे ही तथ्य एआई उसे सेकंडों में दे देता है। हां, एआई आंकड़े देते वक्त यूजर को खुश करने के लिए अपुष्ट तथ्य न दे, चाटुकारिता से बचे और आश्वस्त न हो तो मना करना भी सीखे कानून की इसीलिए हमें जरूरत है।

Date: 13-06-26

कोई भी तकनीक हमसे जीने की अनुभूति नहीं छीन सकती

शिव्या नाथ, (ट्रैवल ब्लॉगर और 'रूटलेस एंड रेस्टलेस' की बेस्टसेलिंग राइटर)

मुम्बई की कई और शामों जैसी ही वह एक शाम थी। मैं मरीन ड्राइव की सी-वॉल पर बैठी थी और मेरे हेडफ़ोन में लियोनार्ड कोहेन का गीत 'फेमस ब्लू रेनकोट' बज रहा था। हवा ने मेरे बालों को बिखेर दिया था और डूबते सूरज की लालिमा मेरी

आंखों में समा गई थी। जैसे ही आग का गोला अरब सागर में उतरा, लहरों की तुमुल-ध्वनि कोहेन की गहरी, सम्मोहक आवाज के साथ मिलकर उस जादुई क्षण को पूर्णता देने लगी। मेरे मन में दूसरे अविस्मरणीय सूर्यास्तों की स्मृतियां उमड़ पड़ीं : क्यूबा के मालेकॉन में, बाली के एक सक्रिय ज्वालामुखी पर और युगांडा के सबसे बड़े राष्ट्रीय उद्यान में सेल्फ-ड्राइव सफारी के दौरान।

फिर मेरा ध्यान भटक गया और मैंने अपना ईमेल खोल लिया। एक नया मेल आया था, जो ऊष्मा और सामंजस्य से भरा हुआ था। लेकिन उसके अंत में लिखा था : 'क्या आप इसका थोड़ा और कैजुअल टोन वाला संस्करण चाहेंगी, या फिर ऐसा जिसे आपके मैनेजर के साथ निजी बातचीत के लिए तैयार किया गया हो?'

बीते कुछ महीनों में मुझे अकसर अपनी लिखने और कम्युनिकेट करने की क्षमता पर संशय हुआ। लेकिन बाद में मुझे एहसास हुआ कि जिन ईमेल और सोशल मीडिया पोस्टों को देखकर मैं प्रभावित हुई थी, वे वास्तव में इंसानों ने लिखे ही नहीं थे। जब मुझे एआई द्वारा लिखे ईमेल मिलते हैं, जब मैं टीम के सदस्यों को काम के लिए इसका उपयोग करते देखती हूं, जब मैं चैटजीपीटी द्वारा लिखी लिंक्डइन पोस्ट और वॉट्सएप मैसेज पढ़ती हूं तो समझ नहीं आता क्या प्रतिक्रिया दूं।

क्या मुझे अपना समय और ऊर्जा उन एआई द्वारा लिखे गए ईमेल और संदेशों का जवाब देने में लगानी चाहिए? क्या मुझे भी चैटजीपीटी का उपयोग करके जवाब देना चाहिए, जिससे ऐसी विद्रूपतापूर्ण स्थिति पैदा हो जाए, जहां एक मशीन दूसरी मशीन से यह दिखावा करते हुए बात कर रही हो कि वह इंसान है? मैं ऐसे आभासी संबंध कैसे बना सकती हूं, जो वास्तविक इंसानों नहीं, एआई द्वारा तैयार किए उत्तरों पर आधारित हों? मैं क्लॉड द्वारा रची जा रही ब्लॉग पोस्टों और न्यूजलेटर्स से कैसे प्रतिस्पर्धा करूं? जब पर्प्लेक्सिटी से बनी किताबें बुकस्टोर्स में छा जाएंगी, तब क्या होगा?

2024 में ऑक्सफोर्ड ने 'ब्रेन रॉट' को वर्ड ऑफ द ईयर चुना था। इसका अर्थ है- सोशल मीडिया पर कम गुणवत्ता और निम्नतर मूल्य वाली सामग्री का अत्यधिक उपभोग करने से हमारे मस्तिष्क का क्षरण। अब इसमें एआई को भी जोड़ दें तो ब्रेन रॉट कई गुना बढ़ जाता है।

मुझे पता है कि तकनीक को नजरअंदाज करने और दुनिया से पीछे रह जाने का क्या परिणाम होता है। जब मैं डिजिटल स्टोरीटेलर के रूप में शुरुआत कर रही थी, तब मैंने पारंपरिक मीडिया के अपने मित्रों के साथ ऐसा होते देखा था। लेकिन एआई केवल कोई नया माध्यम या उपकरण नहीं है; यह एक क्रिएटिव व्यक्ति के रूप में हमारे अस्तित्व पर ही प्रश्न उठा रहा है।

मैंने अपना फोन रख दिया। समुद्र-तट के आकाश में नारंगी और गुलाबी रंगों की छटाएं फैल गई थीं। मुझे एहसास हुआ कि कोई भी तकनीक इस अकथनीय सुख को कभी पूरी तरह री-क्रिएट नहीं कर सकती- यहां बैठने का आनंद, मुंबई की नमकीन हवा को सांसों में संजोने का अनुभव, सूर्यास्त को समुद्र में उतरते हुए देखने का क्षण और एक महानगर के जन-ज्वार के बीच भी एक अजीब-सी शांतचित्तता की अनुभूति।

डेढ़ महीने से अधिक समय तक मैंने स्वयं को पूरी तरह जर्मन भाषा सीखने के लिए समर्पित कर दिया था। हर दिन पांच घंटे एक नई भाषा सीखने में खुद को लगाना थकाऊ काम था, लेकिन साथ ही यह ऊर्जा से भर देने वाला भी था। मेरे

मस्तिष्क में नए तंत्रिका-संबंध (सिनैप्स) बन रहे थे। हां, चैटजीपीटी तुरंत अनुवाद कर सकता है, लेकिन वह कभी भी भाषाओं में छुपे रहस्य को जानने का सुख नहीं रच सकता।

मेरे छोटे-से विद्रोह का रूप एआई से दूरी बनाना नहीं, अपने ब्रेन रॉट को पहचानना था। इस वर्ष की शुरुआत में मैंने महसूस किया कि छोटे प्रारूप वाली कहानियों ने लंबे समय तक चलने वाले प्रोजेक्ट्स पर काम करने की मेरी क्षमता को प्रभावित किया था। इसलिए मैंने सचेत रूप से गहन कार्य और धीमी, टिकाऊ उत्पादकता को प्राथमिकता देना शुरू किया।

उस शाम मरीन ड्राइव पर एक सम्मोहक अर्धचंद्र दिखाई दिया। मुम्बई के क्षितिज की रोशनियां जगमगाने लगीं, हवा तेज हो गई, भीड़ धीरे-धीरे छंट गई। अपनी जगह पर बैठे, उन तमाम उलझे हुए तरीकों के बारे में सोचते हुए- जिनसे हम बदलावों का सामना करते हैं- मैंने स्वयं को अपरिष्कृत, भ्रांत और अपूर्ण महसूस किया- लेकिन जीवित भी! कोई भी तकनीक इसे हमसे नहीं छीन सकती!

दैनिक जागरण

Date: 13-06-26

नए दौर में भारतीय कृषि

शिवराज सिंह चौहान, (लेखक केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण तथा ग्रामीण विकास मंत्री हैं)

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में बीते 12 वर्षों के दौरान भारतीय कृषि एक नए दौर में प्रवेश कर चुकी है। पहले हमारी सबसे बड़ी चिंता यह थी कि देश में अनाज की कमी न हो और किसी तरह भूख से बचाव हो जाए। आज मोदी जी की दूरदर्शिता और किसान हितैषी नीतियों के कारण कृषि सिर्फ 'उत्पादन के क्षेत्र' तक सीमित न होकर किसान की समृद्धि, जोखिम- सुरक्षा, पोषण सुरक्षा, हरित तकनीक और ग्रामीण विकास का समन्वित आधार बन गई है। हरित क्रांति के बाद पहली बार नीतियां फसल उत्पादन के बजाय किसान की वास्तविक आय, टिकाऊ कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती जैसे पहलुओं पर केंद्रित हैं। इसी सोच से दलहन-तिलहन मिशन, काटन मिशन, प्राकृतिक खेती मिशन, पीएम धन-धान्य कृषि योजना, खेत बचाओ अभियान, डिजिटल कृषि और शोध-नवाचार, सबको एक ही व्यापक दृष्टि से जोड़ा जा रहा है। समन्वित प्रयासों का ही परिणाम है कि आज भारत खाद्यान्न उत्पादन में 3765.63 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर है।

मोदी सरकार ने किसान की जोखिम- सुरक्षा को भी प्राथमिकता दी है। पीएम किसान सम्मान निधि के तहत अब तक 22 किस्तों के माध्यम से किसानों के खातों में सीधे 4.27 लाख करोड़ रुपये से अधिक की सहायता पहुंच चुकी है। सिंचाई,

ग्रामीण सड़कों, कृषि- अवसंरचना, वेयरहाउस और कोल्ड- चेन में निवेश ने उत्पादन, भंडारण और बाजार तक पहुंच को मजबूत किया है। लंबे समय तक दालें, खाद्य तेल और कपास जैसे क्षेत्रों में हम अपनी क्षमताओं से पीछे रहे। मोदी सरकार ने इन तीनों को रणनीतिक प्राथमिकता देते हुए अलग-अलग मिशन के रूप में आगे बढ़ाया है। राष्ट्रीय दलहन, तिलहन और काटन मिशन इस दिशा में बहुत उपयोगी साबित हो रहे हैं। इन अभियानों का उद्देश्य है किसान को उत्पादन के साथ-साथ वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा योग्य गुणवत्ता, बेहतर मूल्य और स्थिर आय भी मिल सके।

रासायनिक तत्वों पर बढ़ती निर्भरता, मिट्टी की दुर्बलता और भूजल पर दबाव जैसे बिंदु हमें आगाह कर रहे हैं कि खेती के तौर-तरीके बदलने होंगे। इसी समझ के साथ प्राकृतिक खेती को एक राष्ट्रीय मिशन के रूप में आगे बढ़ाया जा रहा है। हमारा संकल्प है कि एक करोड़ किसानों को प्राकृतिक खेती के लिए सेंसिटाइज कर इनमें से लगभग 18 लाख किसानों को सक्रिय रूप से प्राकृतिक खेती अपनाने के लिए तैयार किया जाए और चरणबद्ध रूप से करीब 75 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को प्राकृतिक खेती के दायरे में लाया जाए। यह परिवर्तन धीरे-धीरे, वैज्ञानिक प्रमाणों और किसानों के अनुभव के आधार पर आगे बढ़ रहा है। इस पहल का उद्देश्य मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना, रासायनिक लागत घटाना और जलवायु झटकों के सामने फसलों को टिकाऊ बनाने के साथ ही उत्पादों को पोषक बनाना है।

भारत जैसे विशाल देश में कुछ क्षेत्र बहुत तेजी से आगे बढ़ते हैं, जबकि कुछ अलग-अलग वजहों से पीछे रह जाते हैं। इस असमानता को दूर करने के लिए पीएम धन-धान्य कृषि योजना की संकल्पना की गई है। इस योजना के तहत लगभग 100 कम उत्पादन वाले जिले चिह्नित किए गए हैं, जहां प्रति हेक्टेयर पैदावार राष्ट्रीय औसत से काफी कम है और किसान अपेक्षित लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। इन जिलों में 11 विभागों की 36 योजनाओं जोड़कर उन्हें समग्र पैकेज में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके तहत सिंचाई, मृदा स्वास्थ्य, बीज, उर्वरक, फसल विविधीकरण, पशुपालन, बागवानी, कृषि-उपकरण, कौशल विकास, अवसंरचना और बाजार -जुड़ाव जैसी सुविधाएं सहजता से उपलब्ध हो पा रही हैं।

यह किसी से छिपा नहीं कि उत्पादन बढ़ाने की होड़ में कई जगहों पर मिट्टी और पानी पर दबाव बढ़ा है। असंतुलित उर्वरक उपयोग, भूजल का अत्यधिक दोहन और सीमित फसल चक्र ने खेत की सेहत को प्रभावित किया है। इसे देखते हुए हमने 'खेत बचाओ अभियान' शुरू किया है। यह अभियान केवल मिट्टी बचाने का नहीं, बल्कि किसानों की आय, भोजन की गुणवत्ता और भविष्य की खाद्य सुरक्षा की रक्षा का है। इसके पांच मुख्य संदेश हैं-किसान मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करे, डीएपी और यूरिया पर अत्यधिक निर्भरता कम करे, जैव एवं नैनो उर्वरकों को अपनाए, हरी खाद, जैविक खाद और एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन को बढ़ावा दे, नकली बीज, उर्वरक और कीटनाशकों के विरुद्ध सतर्क रहे। लक्ष्य यह नहीं कि उर्वरक खपत अचानक कम कर दी जाए, बल्कि यह है कि हर किसान सही मात्रा, सही समय और सही मिश्रण का उपयोग करे, ताकि मिट्टी की सेहत लंबे समय तक बनी रहे, लागत घटे और उत्पादन भी सुरक्षित रहे।

कृषि को विज्ञान, अनुसंधान और डिजिटल तकनीक के माध्यम से और लाभकारी बनाने की दृष्टि से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आइसीएआर) ने 2014–25 के बीच लगभग 3,000 ऐसी किस्में विकसित की हैं, जो जलवायु परिवर्तन से निपटने में कहीं अधिक सक्षम हैं। इस क्रम में डिजिटल कृषि मिशन और एग्रीस्टैक के तहत किसान पहचान, फसल प्लाटों का डिजिटलीकरण, ड्रोन- आधारित सेवाएं, कीट-रोग निगरानी, मौसम और स्थान विशेष की आवश्यकता के अनुरूप सलाह जैसी व्यवस्था की जा रही है।

भारत को दुनिया की खाद्य, पोषण और जलवायु चुनौतियों के बीच अपने कृषि-तंत्र को और मजबूत बनाना है। प्रधानमंत्री का विजन स्पष्ट है कि किसान की आय बढ़े, उसकी मेहनत का उचित सम्मान और मूल्य मिले, दालों, तिलहनों और कपास में आत्मनिर्भरता से पोषण, तेल, वस्त्र सुरक्षा मजबूत हो। प्राकृतिक खेती, खेत बचाओ अभियान और जलवायु -अनुकूल तकनीक से खेत की मिट्टी, पानी और किसान की सुरक्षा सुनिश्चित हो और कम उत्पादन वाले जिलों में असमानता घटे। खेती कुशल, लचीली, टिकाऊ और प्रतिस्पर्धी बने। याद रहे कि जब खेत बचेगा, तब ही किसान बचेगा। जब किसान बचेगा, तब कृषि बचेगी और जब कृषि बचेगी, तब भारत का भविष्य सुरक्षित, समृद्ध और आत्मनिर्भर बनेगा। हमारी नई कृषि यात्रा का सार है-फसल से आगे, किसान के विश्वास और ग्रामीण भारत की समृद्धि की ओर।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 13-06-26

सुपर फूड स्पाइरुलीना के बारे में जागरूकता बढ़ाने की दरकार

कविता राव, (लेखिका राष्ट्रीय लोक वित्त और नीति संस्थान की निदेशक है)

संपूर्ण पोषण का एक अद्भुत स्रोत वास्तव में न तो कोई अनाज है और न ही मांसाहारी खाद्य पदार्थ। इसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल, महत्त्वपूर्ण विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। यह एक जलीय जीव है, जो सूर्य की ऊर्जा से प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं तैयार करता है। यह सुपरफूड है स्पाइरुलिना जिसमें वजन के हिसाब से 65 से 70 फीसदी तक प्रोटीन है और यह वास्तव में नीले-हरे शैवाल का एक रूप है जो कई अरब वर्षों से प्रकृति में मौजूद है।

स्पाइरुलिना की खासियत यह है कि यह खराब गुणवत्ता वाले पानी और कठिन परिस्थितियों में भी पनप सकता है जिसमें अधिकांश फसलें उग ही नहीं पातीं। सुव्यवस्थित मत्स्यपालन वाले केंद्रों में इन शैवाल की किस्में मात्र दो-तीन दिनों में अपनी मात्रा दोगुनी कर लेती हैं और केवल 10 से 14 दिनों में कटाई योग्य हो जाती हैं। इसके अलावा, स्पाइरुलिना वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को भी अवशोषित करता है जिससे यह प्राकृतिक कार्बन सिंक के रूप में भी काम करता है। भारत जैसे देश के लिए स्पाइरुलिना किसी वरदान से कम नहीं हो सकता, जहां कुपोषण और विशेष रूप से प्रोटीन की कमी तथा एनीमिया का व्यापक प्रसार है। वर्ष 2019-21 के दौरान कराए गए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 के अनुसार, पांच वर्ष से कम उम्र के 35.5 फीसदी बच्चों का कद उनकी उम्र के लिहाज से कम है जबकि 19.3 फीसदी बच्चों का अपनी कद के हिसाब से कम वजन है और वे बेहद कमजोर या दुबले हैं। लगभग 58 फीसदी बच्चे एनीमिया से पीड़ित हैं और 32.1 फीसदी बच्चे बेहद कम वजन वाले हैं। वयस्कों में भी कुपोषण की स्थिति चिंताजनक है और करीब 23 फीसदी महिलाएं और 20 फीसदी पुरुषों का वजन कम है।

दुनिया भर में इस गैर-परंपरागत खाद्य वस्तु, स्पाइरुलिना का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। हालांकि इसकी वृद्धि में मुख्यतौर पर फिटनेस के प्रति जागरूक लोगों का योगदान है जिन्हें इसकी पौष्टिकता वाले गुणों की जानकारी है जबकि वास्तव में इसकी सबसे अधिक आवश्यकता कुपोषित लोगों को है। आज स्वास्थ्य उत्पाद बेचने वाले दुकानों में स्पाइरुलिना

से बने टैबलेट, कैप्सूल, स्मूदी और एनर्जी बार आसानी से उपलब्ध हैं। ये पोषक तत्त्वों से भरपूर उत्पाद न केवल शरीर को ऊर्जा देते हैं बल्कि ये रोग प्रतिरोधक क्षमता भी देते हैं क्योंकि इनमें उच्च स्तर का एंटी ऑक्सीडेंट है। स्पाइरुलिना में विटामिन ए, सी और ई प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं जो त्वचा की कोशिकाओं के दोबारा बनने में सहायक होते हैं और त्वचा को स्वस्थ बनाए रखते हैं। यह कोलेस्ट्रॉल कम करने और रक्तचाप नियंत्रित रखने में भी मदद करता है, जिससे हृदय स्वस्थ रहता है। साथ ही, यह लीवर और किडनी के कार्य को बेहतर बनाकर शरीर से भारी धातुओं और हानिकारक तत्वों को बाहर निकालने में भी सहायक माना जाता है।

हालांकि विकसित देशों की तुलना में भारत में स्पाइरुलिना आधारित खाद्य उत्पादों का उत्पादन और उपभोग अब भी काफी कम है। कई विकसित देशों में यह अब केवल फिटनेस प्रेमियों तक सीमित नहीं रहा बल्कि बुजुर्गों और शारीरिक रूप से कमजोर लोगों के नियमित आहार का हिस्सा बन चुका है। दिलचस्प बात यह है कि अमेरिका की अंतरिक्ष एजेंसी नासा भी अंतरिक्ष यात्राओं के दौरान अंतरिक्ष यात्रियों के भोजन में स्पाइरुलिना को शामिल करती रही है जिसके नतीजे बेहतर हैं। अच्छी बात यह है कि अब भारत में भी कई मत्स्य और जलीय कृषि से जुड़े किसान, स्पाइरुलिना की खेती की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जिससे इसका उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है। बढ़ती मांग और अधिक मुनाफा के कारण इसकी खेती करने के लिए लोग प्रोत्साहित हो रहे हैं। आज स्पाइरुलिना खेती को कृषि का एक उच्च मूल्य वाला क्षेत्र माना जाने लगा है। सामान्यतौर पर इसकी खेती छोटे जलाशयों या एक एकड़ से कम क्षेत्र वाले तालाबों में की जाती है। पानी के रिसाव को रोकने के लिए इन तालाबों को अक्सर कंक्रीट या प्लास्टिक शीट से ढका जाता है।

भारत का दक्षिणी क्षेत्र स्पाइरुलिना उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है जहां पूरे वर्ष गर्म जलवायु और पर्याप्त धूप उपलब्ध रहती है। महाराष्ट्र और तेलंगाना में भी इसकी खेती हो रही है क्योंकि वहां पर्याप्त धूप और गर्म मौसम उपलब्ध है। तमिलनाडु देश का सबसे बड़ा स्पाइरुलिना उत्पादक राज्य बन चुका है, जबकि इसके बाद कर्नाटक और आंध्र प्रदेश का स्थान आता है। देश में प्रतिवर्ष लगभग 2,000 से 2,500 टन स्पाइरुलिना का उत्पादन होता है, जिसमें अकेले तमिलनाडु का योगदान लगभग 1,500 टन है। आंध्र प्रदेश और कर्नाटक का उत्पादन क्रमशः लगभग 300 और 400 टन आंका गया है।

कई किसानों ने अब नियंत्रित वातावरण में स्पाइरुलिना उत्पादन की आधुनिक इकाइयां भी तैयार की हैं। हालांकि इसमें अधिक लागत आती है लेकिन ऐसी खेती का उत्पाद 10,000 से 15,000 रुपये प्रति किलोग्राम तक बिकता है। इस कारण यह खेती खाद्य और नकदी फसलों में सबसे अधिक लाभदायक मानी जा रही है। खुले तालाबों में उगाए गए स्पाइरुलिना की कीमत भी 5,000 से 8,000 रुपये प्रति किलोग्राम तक मिल जाती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद अब वैज्ञानिक तरीके से स्पाइरुलिना की खेती को बढ़ावा दे रहा है। नई दिल्ली में मौजूद भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने हाल ही में स्पाइरुलिना की खेती, प्रसंस्करण, मार्केटिंग और इससे बने मूल्यवर्धित उत्पादों पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किया। स्पाइरुलिना उद्योग के अनुमान के अनुसार, इसकी वार्षिक मांग में वर्तमान में 15 से 20 फीसदी की दर से वृद्धि हो रही है। माना जा रहा है कि जैसे-जैसे लोगों में इसके स्वास्थ्य लाभों के प्रति जागरूकता बढ़ेगी, इसकी मांग और भी तेजी से बढ़ सकती है। सरकार को चाहिए कि वह स्पाइरुलिना और इससे बने मूल्यवर्धित उत्पादों को अपनी पोषण संबंधी प्रमुख योजनाओं के माध्यम से बढ़ावा दे। विशेष रूप से कृषि मंत्रालय द्वारा हाल ही में शुरू किए गए 'सेहत मिशन' में इसे शामिल किया जा सकता है। इस मिशन का उद्देश्य नए तरह के

और पौष्टिक खाद्य पदार्थों के माध्यम से बेहतर पोषण सुनिश्चित करना है। स्पाइरुलिना इस पहल के लिए पूरी तरह उपयोगी खाद्य पदार्थ साबित हो सकता है।

जनसत्ता

Date: 13-06-26

पहाड़ के लिए जोखिम बनते दावानल

प्रमोद भार्गव

उत्तर भारत के पहाड़ी राज्यों हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और जम्मू-कश्मीर के जंगलों में लगी आग पर वायुसेना ने काबू न पाया होता, तो यह बड़े संकट का सबब बन गई होती। हिमाचल के सोलन जिले के कसौली क्षेत्र में लगी आग सैन्य ठिकानों और आवासीय इलाकों तक पहुंच गई थी। वन अमला आग बुझाने का कोई सार्थक उपाय कर नहीं पाया, तब भारतीय वायुसेना को राहत अभियान में उतरना पड़ा। उत्तरकाशी में जंगल की आग गंगोत्री राजमार्ग पर पहुंच गई थी, जहां गेस्ट हाउस में ठहरे 70 यात्रियों को बड़ी मुश्किल से बचाया गया। जम्मू-कश्मीर के उधमपुर और रामबन जिलों में कई दिनों तक पहाड़ धधकते रहे।

गर्मी का मौसम शुरू होते ही पहाड़ी वनों में आग लगने की घटनाएं प्रतिवर्ष सुर्खियां बनने लगती हैं, लेकिन किसी भी राज्य ने आग रोकने का स्थायी प्रबंध करने की जरूरत आज तक नहीं समझी है। इन घटनाओं से हजारों हेक्टेयर जंगल सुलगकर राख में बदल जाते हैं। हिमाचल के अकेले कसौली वन क्षेत्र में दस हेक्टेयर जंगल राख हो गया। उत्तराखंड के वनों में आग लगने की 388 से ज्यादा घटनाएं दर्ज होने के साथ तीन लोगों की मृत्यु हो गई। कोई 340 हेक्टेयर वन भूमि धधकती रही। चमोली के आदिबद्री और कालसी में ग्रामों तक आग पहुंच गई। पौड़ी में आग लगाने के आरोप में दो लोगों को हिरासत में लिया गया। जम्मू-कश्मीर के रामबन, चंदरकोट और उधमपुर में भी कई वन क्षेत्रों के धधकने की खबर आई। इन पहाड़ी क्षेत्रों में आग पर काबू पाना इसलिए मुश्किल होता है, क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में राहत आसानी से पहुंच नहीं पाती। यहां आग बुझाने का काम वन विभाग और स्थानीय लोगों की मदद से ही संभव हो पाता है।

चीड़ के जंगल और लैंटाना की झाड़ियां इस आग को फैलाने के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं। दरअसल, चीड़ के पत्तों में एक विशेष किस्म का ज्वलनशील पदार्थ होता है। ये पत्तियां पतझड़ के मौसम में आग में घी का काम करती हैं। गर्मियों में पत्तियां जब सूख जाती हैं, तो इनकी ज्वलनशीलता और बढ़ जाती है। इसी तरह, लैंटाना जैसी विषाक्त झाड़ियां आग को भड़काने का काम करती हैं। करीब 40 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र में ये झाड़ियां फैली हुई हैं। इन पत्तियों में भयावह आग लग जाती है। इससे वर्षा कम होती है। तापमान बढ़ जाता है। इन वजहों से यहां पतझड़ की मात्रा बढ़ी, उसी अनुपात में मिट्टी की नमी घटती चली गई। ये ऐसे प्राकृतिक संकेत थे, जिन्हें वन अधिकारियों को समझने की जरूरत थी।

वैसे चीड़ और लैंटाना भारतीय मूल के पेड़ नहीं हैं। अंग्रेजों ने जब पहाड़ों पर आशियाने बनाए, तब उन्हें बर्फ से आच्छादित पहाड़ियां अच्छी नहीं लगीं। वे ब्रिटेन के बर्फीले क्षेत्र में उगने वाली चीड़ की प्रजाति के पौधे भारत ले आए और बर्फीली

पहाड़ियों के बीच खाली पड़ी भूमि में रोप दिए। इन पेड़ों को जंगली जीव और मवेशी नहीं खाते हैं। इसलिए अनुकूल प्राकृतिक वातावरण पाकर ये तेजी से फलने-फूलने लगे। इसी तरह, लैंटाना को भारत की दलदली और बंजर भूमि में पौधारोपण के लिए लाया गया था। यह विषैला पौधा भारत के किसी काम तो नहीं आया, लेकिन इसने लाखों हेक्टेयर भूमि में फैलकर उपजाऊ जमीन जरूर लील ली। ये दोनों प्रजातियां ऐसी हैं, जो अपनी छाया में किसी अन्य पेड़-पौधे को पनपने नहीं देती हैं। चीड़ की एक खासियत यह भी है कि जब इसमें आग लगती है, तो इसकी पत्तियां ही नष्ट होती हैं। तने और डालियों को ज्यादा नुकसान नहीं होता। पानी बरसने पर ये फिर से हरे-भरे हो जाते हैं। लगभग यही स्थिति लैंटाना की भी है।

चीड़ और लैंटाना को उत्तराखंड से निर्मूल करने के लिए कई बार सामाजिक संगठन आंदोलन कर चुके हैं, लेकिन सार्थक नतीजे नहीं निकले। अलबत्ता, इनके पत्तों से लगने वाली आग से बचने के लिए चमोली जिले के एक गांव के लोगों ने चीड़ के पेड़ों की जगह हिमालयी मूल के पेड़ लगाने शुरू कर दिए। जब ये पेड़ बड़े हो गए, तो इस गांव में 20 साल से आग नहीं लगी। इसके बाद कई ग्रामवासियों ने इस देसी तरीके को अपना लिया। इन पेड़ों में पीपल, देवदार और अखरोट के वृक्ष लगाए गए हैं। यदि वन अमला ग्रामीणों के साथ मिलकर ऐसे उपाय करता, तो आज उत्तराखंड के जंगलों की यह दुर्दशा नहीं होती।

जंगल में आग लगने के कई कारण होते हैं। जब पहाड़ियां तपिश के चलते शुष्क हो जाती हैं और चट्टानें भी खिसकने लगती हैं, तो प्रायः घर्षण से आग लग जाती है। तेज हवाएं चलने पर जब बांस परस्पर टकराते हैं, तो इससे पैदा होने वाले घर्षण से भी आग लग जाती है। बिजली गिरना भी आग लगने के कारणों में शामिल है। ये कारण प्राकृतिक हैं और इन पर विराम लगाना असंभव है। मगर मानव-जनित जिन कारणों से आग लगती है, वे अधिक खतरनाक हैं। इसमें वन-संपदा के दोहन से अकूत मुनाफा कमाने की होड़ भी शामिल है। भू-माफिया, लकड़ी माफिया और भ्रष्ट अधिकारियों का गठजोड़ इस कारोबार को फलने-फूलने में सहायक बना हुआ है। राज्य सरकारों ने विकास का पैमाना भी आर्थिक उपलब्धि को माना है, इसलिए सरकारें पर्यावरणीय क्षति को नजरअंदाज करती हैं।

आग लगने की अन्य वजहों में बीड़ी-सिगरेट भी हैं, तो कभी शरारती तत्व भी आग लगा देते हैं। कभी ग्रामीण अपने पशुओं के चारे के लिए सूखी और कड़ी पड़ चुकी घास में आग लगा देते हैं। ऐसा करने से धरती में जहां-जहां नमी होती है, वहां-वहां घास की नई कोंपलें फूटने लगती हैं, जो मवेशियों के लिए पौष्टिक आहार का काम करती हैं। पर्यटन वाहनों के साइलेंसर से निकली चिंगारी भी आग की वजह बनती है। आग से बचने के कारगर उपायों में पतझड़ के दिनों में टूटकर गिर जाने वाले पत्तों का प्रबंधन महत्वपूर्ण है, क्योंकि यही पत्ते आग लगने की बड़ी वजह बनते हैं। केंद्रीय हिमालय में 2.1 से लेकर 3.8 टन प्रति हेक्टेयर पतझड़ होता है। इसमें 82 प्रतिशत सूखी पत्तियां और बाकी टहनियां होती हैं। जंगलों पर वन विभाग का अधिकार होने से पहले अपने अनुभव के आधार पर ग्रामीण इस पतझड़ से जैविक खाद बना लिया करते थे। इन पत्तों को मवेशियों के बिछौने के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता था। किंतु वन कानूनों के वजूद में आने से वनोपज पर स्थानीय लोगों का अधिकार खत्म हो गया।

इस सबके बावजूद जंगल में लगी आग को बुझाने के तरीके परंपरागत हैं। वन अमला हरी टहनियों की झाड़ू बनाता है और उसकी फटकार से आग बुझाने का काम करता है। इस तरीके से दावानल को नहीं बुझाया जा सकता। वनों में आग लगने का एक बड़ा कारण आरक्षित वनों, अभयारण्यों और उद्यानों से ग्रामवासियों का विस्थापन किया जाना भी है। ये जब तक जंगल के वासी रहे, तब आग बहुत कम लगती थी, क्योंकि ये लोग आग लगते ही उसे बुझा दिया करते थे।